

## भारतीय जनतंत्र और सामाजिक सरोकार

गिरीश्वर मिश्र

कुलपति, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय



गणतंत्र दिवस अनुशासन और कार्य के प्रति प्रतिबद्धता का आह्वान करता है क्योंकि जनतंत्र की व्यवस्था अपनी ही जवाबदेही की होती है। आज जब देश के बाहर और भीतर की चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं तो इस तरह के सरोकार और भी महत्व के हो जाते हैं। जब हमने अपना संविधान स्वीकार किया था तब का भारत और आज का भारत भूगोल और इतिहास की दृष्टि से बदल चुका है। हम भारतीय प्रायद्वीप के एक नए संस्करण में जी रहे हैं जहां देश के अंदर और

बाहर का नक्शा और सीमा रेखा कई बार बदली और अभी भी उलझाऊ मसला बनी हुई है। हमें नए जैव-राजनीतिक समीकरण बनाने पड़ रहे हैं। प्रतियोगिता और संघर्ष के नित नए-नए मोर्चे खुल रहे हैं जिनसे जूझना खतरों और जोखिम भरा काम है। इस तरह की परिस्थितियां तमाम तरह की गैर जरूरी जिम्मेदारियां और भार बढ़ा देती हैं जिनसे आंतरिक संतुलन नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

आज हमारी मुख्य चुनौतियां आर्थिक, भौतिक, सामाजिक और बौद्धिक संसाधनों की हैं। देश के भीतर जो मानव संपदा है उसे देखें तो लगेगा कि हम भाषा, धर्म जाति और समुदाय की नई श्रेणियों, उनकी पहचान और उनकी महत्वाकांक्षाओं को लेकर लगातार राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तरों पर जूझते रहे हैं। इन सबके बावजूद अब तक की हमारे राष्ट्र की यात्रा महान रही है। हमने आम चुनाव कराए और सत्ताएं बदलीं, शिक्षा और स्वास्थ्य के संस्थान बनाए, तकनीकी और प्रबंधकीय शिक्षा के अच्छे केंद्र बनाए और उनमें कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियां भी हासिल हुईं। पर इन सबका दायरा और रुझान अभिजात्य या 'एलीट' की ओर होता गया और सामान्य जन इनसे दूर होते गए। चूंकि लाभ पाने वाले वे सशक्त और संपन्न थे इसलिए वे ऐसी व्यवस्था को बनाने का काम करते रहे जिसमें एक व्यापक तबका, जिसमें गरीब और निम्न मध्य वर्ग के लोग आते हैं, वंचित बना रहे। इसका ज्वलंत उदाहरण है अंग्रेजी का वर्चस्व जो पूरे भारत में लगभग 11 प्रतिशत जनता की भाषा है पर समाज में आगे बढ़ने के लिए सीढ़ी सरीखी है। ज्ञान, नौकरी और आर्थिक विकास के लिए अंग्रेजी को बेहद जरूरी माना जाता है और अंग्रेजी माध्यम के स्कूल अच्छी धन उगाही करते हैं।

आज शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं की कीमत आम आदमी की हैसियत से बहुत ज्यादा हो चली है और वह हैरान-परेशान हो रहा है। उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की जो हवा देश में पिछले एक दो दशकों में बही है उसने समाज के ताने-बाने में गहरी उथल-पुथल मचा दी है। जीने के संसाधन जुटाना दिनोंदिन बढ़ती महंगाई के चलते कठिन होता जा रहा है। मीडिया के कारण हमारी आकांक्षाओं के क्षितिज का निरंतर विस्तार होता जा रहा है। लिप्सा और लोभ ने अपराध, धन और राजनीति के बीच भयानक, पर मजबूत रिश्ता बना डाला है। इसके चलते आज चुनाव में धन बल और बाहुबल सफलता के लिए अनिवार्य सा हो गया है। लोगों के बीच दूरियां बढ़ती जा रही हैं और उन्हें प्रलोभन से पाटा जा रहा है। बहुलता और भिन्नता का आदर न कर लोग कृत्रिम ढंग से निकटता बढ़ा रहे हैं और ऐसी स्थिति के विस्फोटक

परिणाम आए दिन सामने आ रहे हैं.

यदि इतिहास देखें तो देश की अनेक क्षेत्रों में बहुलता स्वाभाविक थी क्योंकि व्यक्ति की सत्ता से कहीं ज्यादा प्रभावी सत्ता उस विश्वमानव की थी जो हर एक के हृदय में समाया हुआ था. एक उदारता, जिसमें भिन्नता के साथ उस भिन्नता का आदर करते हुए जीने की गुंजाइश थी. हिंदू और मुसलमान एक दूसरे की भिन्नता को जायज मानते हुए अलग मानते हुए भी एक साथ रह सकते थे क्योंकि हर किसी में दूसरा भी मौजूद रहता था. धर्मनिरपेक्षता नहीं बल्कि धर्मपरायणता यानी यह मानना कि हमारा धर्म है कि हम दूसरे के धर्म की रक्षा करें, सिर्फ इस आधार पर कि मनुष्यता का यह तकाजा है कि हम सबमें एक तत्व को देख सकें- 'सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते'. पर आज भिन्नता और अद्वितीयता या अनोखेपन का बोलबाला हुआ जा रहा है और उसका फल है द्वेष और घृणा. भारतीय जनतंत्र की स्थापना के सात दशक बीतने पर भी यह प्रश्न कठिन मुंह बाए खड़ा है कि हम सब साथ-साथ रहना कब सीख सकेंगे? लल■



लोकमत समाचार 26-01-2015

# गणतंत्र दिवस विशेषांक 2015

## भारतीय जनतंत्र और सामाजिक सरोकार



प्रो. गिरीश्वर मिश्र

से प्रभावित होत है। आज हमारी युवा शक्ति अर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक और वैदिक संघर्षों की है। देश के भीतर जो मानव संसाधन हैं उसे देखीं तो लगता कि हम भाग्य, धर्म जदि और मनुष्यता की नई शक्ति, उनकी पहचान और उनकी महत्त्वकांक्षियों को लेकर लगातार राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तरों पर जुड़ते रहे हैं। इन सबके मातृभूत अब तक की हमारी रूढ़ि की यात्रा महान रही है। हमने अलग युवाएं बनाए और सत्ताएं बनाई, शिक्षा और स्वास्थ्य के संश्लेषण बनाए, तकनीकी और प्रबंधकीय शिक्षा के अच्छे केंद्र बनाए और उनमें कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियां भी हुईं। पर इन सबका तापण और रक्षण अधिकांशतः पा 'एलिट' की ओर होत गय और सामान्य जन इससे दूर होत गय।

भूकें लाने चने जाने से सफल और संपन्न थे इसलिए वे ऐसी व्यवस्था को बनाने का काम करते रहे जिसमें एक व्यवस्था तबकर, जिसमें गरिब और विद्यमान सब वर्ग के लोग आते हैं, बचत बन रहे। इसका इतना उदाहरण है अंग्रेजी का वर्चस्व जो पूरे भारत में लगभग सवाइ प्रतिशत जनता की भाषा है पर समाज में आगे बढ़ने के लिए अंग्रेजी सीखनी है। जन, नीकरी और अर्थिक विकास के लिए अंग्रेजी को बेहद जरूरी माना जात है और अंग्रेजी माध्यम के स्कूल अच्छी धन उगाही करते हैं।

आज शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मूलभूत सुविधाओं की कीमत अलग आदमी की दृष्टि से बहुत ज्यादा



हो चली है और वह हैरान-पौराण हो रहा है। उदाहरण, वैद्यकीय और विद्योत्तरण की जो हवा देश में पिछले एक दो दशकों में बही है, उसने खोखल के लाने-बाने में गहरी उथल-पुथल मचा दी है। जीने के संसाधन जुटाते दिशेदिश बढ़ती सौभाग्य के चलते कठिन होत जा रहा है।

नीटिया के कारण हमारी आकांक्षाओं के सिद्धि का निरंतर विस्तार होत जा रहा है। शिक्षा और लैंगे से अपराध, धन और राजनीति के बीच भ्रमण पर मजबूत निरत बन डालत है। इसके पहले आज युवा में धन बल और चाहत सकलता के लिए अनिर्णय सा हो गय है। लैंगे के बीच दूरियां बढ़ती

जा रही हैं और उन्हें प्रलोभन से घेरा जा रहा है। बहुलता और भिन्नता का आदर न कर लोग कुविम डंग से निकलत बड़ा रहे हैं और जो सिद्धि के विस्मोदक परिणाम आर दिन सामने आ रहे हैं।

यदि इतिहास देखें तो देश की अनेक क्षेत्रों में बहुलता सामाजिक थी क्योंकि व्यक्ति की सहा से बहोत ज्यादा प्रभावी सहा उस विस्मोदक की थी जो हर एक के हृदय में समाया हुआ था। एक उदारता जिसमें भिन्नता के साथ उस भिन्नता का आदर करते हुए जीने की गुंजाइश थी। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे की भिन्नता को जयज मानते हुए अलग-अलग हुए भी एक साथ रह सकते थे क्योंकि हर किसी

में दूसरा भी मौजूद रहता था। धर्मनिरपेक्षता नहीं बल्कि धर्मप्रायश्चित्त यानी यह मानना कि हमारा धर्म है कि हम दूसरे के धर्म को रक्षा करें, सिर्फ इस अकार पर कि मनुष्यता का यह तकाजा है कि हम सबमें एक तत्व को देख सकें - 'सर्वभूतेषु देवैक भावमागच्छन्मते'। पर आज भिन्नता और अतिरीयता या अनेकधन का बोलबाला हुआ जा रहा है और उसका फल है देश और-धूम। भारतीय जनतंत्र की स्थापना के सवाइ दशक बीतने पर भी यह झलकतिये मुह बाए खड़ा है कि हम सब साथ-साथ रहना कम सीख सकेते?

आजारी की लड़ाई में सब साथ थे। तब स्वतंत्रता का विजय कर्म

और बलिदान से बच था। उसमें महिला और उसी कुटुंब लैंगे का उसके साथ सहज भावनात्मक लगाव था।

उनके व्यक्तिगत जीवन के प्रयोगों में देश और समाज के साथ बिना किसी शर्त के जुड़ाव भी सुकर था। भी-भी बदलते समय के साथ हमारे जीवन में इस तरह के जुड़ाव को जगह सिद्धि हुई। देश और समाज को भ्रमणकारी की दुनिया से बहार खींच लिया गय। उसकी जगह व्यवहार और उपलब्धता के लगे ने जगह ली और बाजार का व्यवस्था हमारे ऊपर हमारे होने लाग।

स्वतंत्रता के बाद जननी पीढ़ी के लिए स्वतंत्रता की पहचान और



श्री. गिरीश्वर मिश्र